International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 7.150, Volume 06, No. 04(II), October - December, 2024, pp. 51-56

प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरूप

डॉ. सुमेर*

प्रस्तावना

मनुष्य के जीवन में आध्यात्मिक और बौद्धिक उत्कर्ष शिक्षा के माध्यम से ही संभव माना गया है। शिक्षा से ज्ञान का उदय होता है और ज्ञान से मनुष्य जीवन आलोकित होता है। ज्ञान द्वारा मनुष्य शिल्प में निपुण होता है। प्राचीन भारत में तीन लोकों की कल्पना की गई है। मनुष्य लोक, पितृलोक और देवलोक। मनुष्य लोक पुत्र द्वारा, पितृलोक यज्ञ द्वारा और देवलोक विद्या द्वारा जीता जा सकता है।

अतः तीनों लोकों में देवलोक को सबसे श्रेष्ठ माना गया। इसलिए शिक्षा का मनुष्य जीवन में अनुपम योगदान है।

ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है। इसके बिना मनुष्य जीवन पशु समान है क्योंकि ज्ञान के बिना जीवन और जगत के रहस्यों को जानना असंभव है। ज्ञान मनुष्य को समृद्धि और सन्मार्ग की ओर ले जाता है। शिक्षा से जीवन सम्बन्धी सिन्द्धांतों और आचरणों को समझन में आसानी होती है। शरीर व मन शिक्षा से ही परिष्कृत व पवित्र होता है। अज्ञानी मनुष्य का जीवन अन्धकारमय है। 'अन्ध तम इबाज्ञानम'। विद्या, माता के समान रक्षा, पिता के समान सहयोग और पत्नि के समान दुःखों को समाप्त कर प्रसन्नता प्रदान करती है।

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुक्तो कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम।
लक्ष्मी तनोति वितनोति चदिक्षु कीर्ति किं किं न साधपति कल्पलतेख विद्या।

शिक्षा के उद्देश्य

विद्या अर्जन से व्यक्ति आत्मनिर्भर और परिवार व समाज के निर्माण में योगदान देता है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य इन उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहता है।

- **मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान**

जीवन के उत्थान व विकास के लिए आत्मविश्वास व आत्मिक शक्ति की आवश्यकता होती है। जो धार्मिक भावना, व्रतों का पालन व ब्रह्मचर्य के पालन से प्राप्त होती है। संयमी मनुष्य को गूढ रहस्यों का भान होता है।[1] मनुष्य के जीवन में तप, दान, आर्जव (सरलता), अहिंसा व सत्य वचन की अनिवार्यता बतायी गयी है। इन्हीं तत्वों से धार्मिक प्रवृत्तियाँ प्रेरित होती हैं।[2]

- **चरित्र का उत्थान :**

व्यक्ति नैतिक क्रियाएं कर सन्मार्ग का अनुसरण करता है। समस्त वेदों का ज्ञाता भी सचरित्रता के अभाव में माननीय नहीं था। जबकि केवल गायत्री मंत्र का ज्ञाता भी सचरित्र होने पर पूजनीय था। अतः चरित्रं

* इतिहास विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान।

[1] रश्मिमाला 10.2, मंगलदेव शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहबाद
[2] छांदोग्य उपनिषद 3.17.4, श्री शंकराचार्य जी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1914

व्यक्ति का आभूषण माना गया।[1] सत्कर्म, सत्यनिष्ठ, सौहार्द, सहिष्णुता, नैतिकता, सदाचार और आदर्श मनुष्य के चरित्र के उत्थान में योगदान देने वाले तत्व हैं। इन तत्वों का निर्माण शिक्षा के माध्यम से होता है।[2] शिक्षा (ज्ञान) के द्वारा मनुष्य तामसी व पाश्विक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रख पाता है।

ब्रह्मचर्य व्रती मनुष्य ज्ञान (विद्या) को धारण करता है। ब्रह्मचर्य के तप से राजा भी राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ होता है।[3] पवित्रता, आचार, स्नान क्रिया, अग्नि क्रिया सम्बन्धी उपासना ब्रह्मचर्य चरित्र के आधार तत्व हैं इनसे चरित्र का उत्थान होता है।[4] कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए व्यक्ति इन्द्रियों व मन को नियंत्रित करता है यही आत्मसंयम है। आत्मसंयम से विवेक न्यायप्रवृत्ति व आध्यात्मिकता में वृद्धि होती है।

श्लोक – युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधव्य योगी भवति दुःखहा।।[5]

सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह

शिक्षित होकर व्यक्ति अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का निष्ठापूर्वक, निर्वाह करता है। समाज में अन्य विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करता है। पुत्र, पति व पिता के रूप में उत्तरदायित्व सम्पन्न करता है। वर्ण जाति व व्यवसाय के अनुसार उत्तरदायित्व निभाता है।[6]

- **सांस्कृतिक जीवन का उत्थान**

शिक्षा द्वारा ही प्राचीन संस्कृति का प्रसार, वैदिक साहित्य की शिक्षा, वेद वेदांग को कंठस्थ करना और उन्हें सदैव स्मरण रखना ब्राह्मण का प्रधान धर्म था। सांस्कृतिक विकास के लिए त्रिऋण की अनिवार्यता मानी गई (देव ऋण, पितृ ऋण व ऋषि ऋण)।[7]

विद्या का आरम्भ

पांच वर्ष की अवस्था में शिक्षा का आरंभ किया जाता था। अपरार्क व स्मृति चन्द्रिका ने मार्केण्डेय पुराण के अनुसार विद्या आरंभ की अवस्था 5 वर्ष बतायी।[8] यह संस्कार चौलकर्म (मुण्डन क्रिया) के साथ ही आरंभ होता था। चौलकर्म के साथ लिपि का ज्ञान भी कराया जाता था। वृत चौलकर्मा लिपि संख्यान चोपयुन्जीत।[9]

- **लेखन उपकरण :** छात्र काली पटिया (तख्ती) पर बाएं से दाएं सफेद वस्तु खड़िया (दुधिया) से लिखते थे।[10]
- **उपनयन संस्कार :** बालक की सुनियोजित व सुव्यवस्थित शिक्षा की शुरूआत उपनयन संस्कार के बाद होती थी। शूद्रों के अलावा तीनों वर्णों को उपनयन करने का अधिकार था। इनके उपनयन संस्कार की आयु निम्न प्रकार से थी –

ब्राह्मण – 8 से 10 वर्ष की आयु, क्षत्रिय – 11 वर्ष और वैश्य की 12 वर्ष की आयु थी। तीनों वर्णों के बालक कुटुम्ब से दूर गुरु के पास शिक्षा ग्रहण करने जाते थे।[11]

गुरुकुल

बालक उपनयन संस्कार के बाद गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण करने जाता था। जो चौबीस वर्ष की आयु तक शिक्षा ग्रहण कर वापस लौटते थे। ब्राह्मण उद्दालक व आरूणि का पुत्र श्वेतकेतु वेदों को पढ़कर घर लौटा। वहां

---

[1] मनुस्मृति 2.118, कुल्लुकभट्ट की टीका, 1946
[2] महाभारत अनुशासन पर्व 12.321.78, नीलकंठ की टीका, गीताप्रेस गोरखपुर, 1929–33
[3] अथर्ववेद 11.5.17, संपादक आर. रौथ और डब्ल्यु.डी. व्हीटने, बर्लिन, 1856, संपादक श्रीपाद शर्मा औंधनगर, 1938
[4] मनुस्ममति 2.69
[5] भगवद्गीता, वेदव्यास, गीता प्रेस, गोरखपुर
[6] तैतरैय उपनिषद, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1914
[7] शतपथ ब्राह्मण 1.5.5
[8] अपरार्क – याज्ञवल्क्य स्मृति पर भाष्य, आनंद आश्रम सस्कृत सीरीज, पूना, 1903–04, पृ. 30–31, स्मृतिचन्द्रिका १, पृ. 26
[9] कौटिल्य अर्थशास्त्र, संपादक आर.राम शास्त्री, मैसूर, 1909, 1929
[10] अलबेरूनी, ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ. 168
[11] मनुस्मति संस्कार, अध्याय 2.36, छान्दोग्य उपनिषद 6.2.1

पर तत्वज्ञान उपदेश की शिक्षा ग्रहण की जाती थी।[1] गुरुकुल (आचर्यकुल) में जाकर शिष्य आचार्य में पितृ और आचार्य पत्नी में मातृ भावना और पारिवारिक वातावरण का अनुभव करता था।[2] भारद्वाज और वाल्मिकी के आश्रम, उच्चकोटि के गुरुकुल थे।[3] महाभारत में उल्लेखित है कि कण्व ऋषि के आश्रम में 10 हजार शिष्य शिक्षा ग्रहण करते थे।

गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण करने की प्रथा बराबर चलती रही। चन्द्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य के सानिध्य में रहकर शिक्षा ग्रहण की। चम्पा निवासी दिशा प्रमुख आचार्य के आश्रम में पांच सौ छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे।[4] गुप्तकाल में भी गुरुकुल की शिक्षा निर्बाध रूप से चलती रही। कालीदास के ग्रंथों में अनेक आश्रमों का उल्लेख मिलता है। बाणभट्ट स्यवं कई वर्षों तक गुरु के आश्रमों में रहा था। 11वीं सदी का अल्बेरूनी भी गुरुकुल का उल्लेख करता है।

आचार्य के प्रकार

- आचार्य (आचार/चरित्र की शिक्षा) – कल्प (यज्ञ), रहस्य (उनरिषद) व वेदशाखा का अध्ययन कराने वाला
- उपाध्याय – वेद व वेदांगों को आजीविका के लिए पढाता था।
- प्रवक्ता (आख्याता) – साहित्य (ब्राह्मण व श्रोतसूत्र) का अध्यापन कराने वाला
- अध्यापक – वैज्ञानिक व लौकिक साहित्य का ज्ञान देने वाला
- श्रोत्रिय – वेद की शाखा को कंठस्थ कर दीक्षा देने वाला
- गुरु – गृहस्थ विद्वान द्वारा शिक्षा
- ऋत्विक – अग्निेष्टोम यज्ञ करने वाला।[5]

आचार्य की योग्यता

अध्यापक अपने विषय का पूर्ण ज्ञानी और विद्वान होता था। शिष्य को मुक्ति का मार्ग दिखाने वाला था। आचार्य वेदों व शास्त्रों का ज्ञाता, सत्य भाषण, तप का पालन, संयमी, अतिथि सत्कारी, गृहस्थ जीवन का पालन करते हुए स्वाध्याय व प्रवचन करे वही वास्तविक तप है। वाकचातुर्य, भाषण पटुता, प्रयुत्पन्नमतित्व, तार्किकता और रोचक कथाओं में दक्ष ग्रन्थों का अर्थ बताने का पण्डित होता था। सुकेशा भारद्वाज से कोसल्य राजपुत्र ने सोलह कलाओं से युक्त पुरुष के विषय में पूछा तब उन्होंने उत्तर दिया – "मैं तुम्हारे प्रश्न को नहीं जानता, तुमसे असत्य नहीं कह सकता।"

प्रवृतवाक चित्रकथः ऊहवान प्रतिभावान्।
आशुग्रन्थस्य वक्ता च यः पण्डित उच्येते।।[6]

गुरु शिष्य सम्बन्ध

गुरु शिष्य का सम्बन्ध पिता पुत्र का था, आचार्य अपने पुत्र व अन्तेवासी को एक ही कोटि में रखता था।[7]

मनु के अनुसार बालक का जन्म दो बार होता है, एक बार माता के गर्भ से और दूसरी बार उपनयन संस्कार से। अर्थात् द्वितीय जन्म में माता गायत्री व पिता आचार्य होता था। कालीदास ने गुरु शिष्य के सम्बन्ध

---

[1] छान्दोग्यउपनिषद 6.1.1–3
[2] वही, 2.23.1
[3] वाल्मिकी रामायण, मद्रास, 1933, गीताप्रेस गोरखपुर
[4] जातक, संपादक फाउसबोल कैम्ब्रिज, 1877–97, हिन्दी अनुवाद 1895–1913, भदन्त आनन्द, कौसल्यायन, आश्वलायन गृहसूत्र, नारायण की टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1894, पृ. 6.32
[5] मनुस्मति 2.141, 2.142, निरूक्त 1.4
[6] कठोपनिषद 11.9, तैतरैय उपनिषद 1.9.1, महाभारत 5.33.33
[7] छान्दोग्य उपनिषद 3.11, पृ. 5–6, निरूक्त 2.4

को गुरुश्री गुरुप्रियम कहा है। इत्सिंग लिखता है शिष्य गुरु के पास रात्रि के पहले व अन्तिम पहर में जाता है उसके शरीर की मालिश करता है, आवास व आंगन में झाड़ू लगाता है, जल छानकर देता है। अपने से बड़े के प्रति आदर इसी प्रकार प्रदर्शित किया जाता है।[1] शिष्य का कर्त्तव्य था कि वह गुरु की दिन रात सेवा करे और गुरु का कर्त्तव्य था कि वह उसे स्नेहपूर्वक पुत्रवत् प्रेम करे, उसकी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान करे। तं मन्येत पितरं, मातरं च तस्मै न द्रुह्येत्कतमाच्चनाह।

शिष्य की योग्यता

छात्र की योग्यता का आधार उसकी विनम्रता, प्रतिज्ञा, शील, संयम आदि गुण होते थे जो उसके जीवन उत्कर्ष में सहायक होते थे। गुरु के समीप रहकर ब्रह्मचारी इन्द्रिय समूह को वश में कर तप के नियमों का पालन करता था।[2]

शिक्षा में जातिभेद का प्रारम्भ

वैदिक युग व उपनिषदकाल में भेदभाव का पूर्णतः अभाव था। उपनिषदों के अनुसार सत्यकाल जाबाल अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान व ज्ञानी था। वह शिक्षा प्राप्त करने के लिए हरिद्रुमत गौतम के यहां गया। उसे उसका गोत्र पूछा गया तब उसने स्वयं को सत्यकाम जाबाल (मां का नाम) बताया। क्योंकि उसे पिता के बारे में ज्ञान नहीं था।[3]परवर्तीकाल (4 वी व 5वीं सदी) में वर्ण अथवा जाति महत्वपूर्ण हो गई थी। शूद्रों को शिक्षा प्राप्त करने से पूर्ण वंचित कर दिया और ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य को ही ब्रह्मचारी बनने का अधिकार था।

उपनिषद काल में आचर्यत्व का प्रधान आधार योग्यता थी, न कि वर्ण या जाति। अनेक क्षत्रिय विद्वान शासकों ने विद्वान ब्राह्मणों को अन्तेवासी स्वीकार किया था। जैसे विदेह शासक जनक, काशी शासक अजातशत्रु, कैकयी नरेश अश्वपति आदि ऐसे क्षत्रिय राजा ज्ञान व दर्शन के विद्वान थे, जिन्होंने ब्राह्मण आचार्यों को अध्यात्म ज्ञान कराया था। परवर्तीकल में अचार्यत्व का आधार वर्ण व जाति हो गई। ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य वर्गों को अध्यापन का अधिकार नहीं था।[4]

शिक्षा के विषय – वेद अध्ययन

प्राचीनकाल में पहले तीन वेदों (त्रयी) का अध्ययन कराया जाता था, बाद में अथर्ववेद को जोड़कर चार वेद (ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद) पूर्ण किए गए। इनमें काव्य, पौराणिक कथाएँ, वीर काव्य व मंत्रों को शामिल किया गया। वेदांग – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द व ज्योतिष थे।

उत्तरवैदिककाल में ब्राह्मण व उपनिषद साहित्य का अध्यापन शुरू हुआ। कालान्तर में दर्शन, न्याय, महाकाव्य, व्याकरण, ज्योतिष, भाषा विज्ञान प्रचलित हुए।[5]

प्रायः वेदों का पारायण (पाठ) सुबह के समय आचार्यकुल में उदात (प्रभावशाली) उच्चारण किया जाता था। श्मशान जैसे स्थान व अमावस्या के दिन वेदाध्ययन वर्जित था।[6]

जो लोग वेद को पूरी तरह नहीं पढ़ सकते थे उनके लिए 400 मंत्रों को इकट्ठा कर 'ब्राह्मणसर्वस्व' का पाठ तैयार किया। पूर्व मध्ययुगीन काल में वेदों का अध्ययन कम होने लगा। इसलिए आचार्यों ने वेदों के अंशों को पढ़ाना आरम्भ किया।[7]

अन्य विषयों का अध्ययन

वेदों के अतिरिक्त वेदांग, व्याकरण, ज्योतिष, पुराण, महाकाव्यों, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्र, सर्प, देवजन (नृत्यसंगीत), गणित आदि का अध्ययन कराया जाता था। वात्स्यायन में 64 विद्याओं का उल्लेख है। शनतकुमार

---

[1] इत्सिंग यात्रा वृत्तांत, पृ. 117–120
[2] पतंजली महाभाष्य, संपादक एफ.कीलहार्न बम्बई 1.1.56, ब्रह्माण्ड पुराण 4.43.68, वेदव्यास विरचित, कलकत्ता, सं. 2009
[3] छान्दोग्यउपनिषद 4.10.14, वृहदारण्यक उपनिषद 6.3.12
[4] वही, 5.3.6, 5.11.5, 11.5.24, वृ.उ. 5.3.6, 3.4.1, 23
[5] अथर्ववेद 15.1, निरूक्त 1.19, 73.6
[6] पतंजली महाभाष्य 1.1.69, 1.1.1, मेघातिथि, मनुस्मृति 3.1
[7] बाणभट्ट, हर्षचरित, अनुवाद केवेल व टामस 1897, कादम्बरी, सम्पादक रामचन्द्र काले, बम्बई

व नारद को अनेक विद्याओं का ज्ञान था। सम्राट समुद्रगुप्त अनेक विषयों में गुरु तुम्बरू और नारद जैसे देवताओं से भी अधिक पारंगत थे। उसकी उपाधि कविराज थी। स्कन्दगुप्त भी गुणी व विद्वान थे।[1]

दण्डी ने पाठ्य विषयों की सूची दी। सभी लिपियाँ, भाषा, वेद, वेदांग, उपवेद, काव्य, नाट्यकला, धर्मशास्त्र, व्याकरण, तर्कशास्त्र, मीमांसा, राजनीति, संगीत, रसशास्त्र, युद्ध व द्युत विद्या, रसायन, भौतिक, इतिहास, दर्शन, साहित्य आदि।[2]

शिक्षा समापन

ब्रह्मचारी गुरुकुल में प्रायः 12 वर्ष अन्तेवासी रहकर शिक्षा ग्रहण करता था। शिक्षा समाप्ति पर स्नान संस्कार या समावर्तन सम्पन्न होता था। इस स्नान के बाद शिक्षार्थी स्नातक कहलाता था। विवाह से पूर्व इसका होना अत्यन्त आवश्यक था। विद्यार्थी ब्रह्मचारी बोधक वस्तुओं को त्याग देता था। आचार्य स्वयं सुगन्धित द्रव्य, आभूषण, माला, छत्र मधुपर्क छात्र को भेंट करता था।[3]

शिष्य गुरु को शिक्षा समापन पर दक्षिणा प्रदान करता था। यह उसका परम कर्त्तव्य थ। जनक ने याज्ञवल्क्य से कहा '' पूरी शिक्षा प्रदान किए बिना शिष्य से कुछ भी ग्रहण नहीं करना चाहिए।'' अपरार्क ने लिखा है ''गुरु को ब्राह्मण गाय दे, क्षत्रिय गांव दे तथा वैश्य घोड़ा दे।

धन की लालसा में शिक्षा प्रदान करने वाले को उपाध्याय कहा जाता था। हालांकि निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने वाले गुरु के भरणपोषण का ध्यान राजा को रखना चाहिए। कौरव व पाण्डव राजकुमारों की शिक्षा के लिए भीष्म ने द्रोणाचार्य को सुसज्जित आवास सुलभ कराया।

कई बार गुरु द्वारा दक्षिणा मांगने पर शिष्य कठिनाई में पड़ जाता था। आचार्य वरतन्तु ने शिष्य कौत्स से 14 करोड़ दक्षिणा मांगी। अन्त में उसने सम्राट रघु से धन प्राप्त कर दक्षिणा दी। उतक से गुरु पत्नी ने राजमहिषि के कर्णफूल मांग लिये थे।[4]

स्त्री शिक्षा

ऋग्वेद में उल्लेखित है कि कतिपय विदुषी स्त्रियों ने ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं के निर्माण में योगदान दिया।

वैदिककाल में ज्ञान और शिक्षा में नारी पुरुष से कम नहीं थी। ऋग्वेद में उल्लेखित है कि कतिपय विदुषी स्त्रियों ने ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं के निर्माण में योगदान दिया। गार्गी ने जनक की राजसभा में याज्ञवल्क्य को गूढ़ प्रश्नों से मूक कर दिया। याज्ञवल्क्य की पत्नि मैत्रेयी अत्यन्त विदुषी महिला थी। उर्वशी, रोमसा, लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विक्ता, विश्वआरां, निबावरी आदि अनेक विदुषी महिलाएं थीं। ये महिलाएं पति के साथ यज्ञ में भी भाग लेती थीं।

विदुषी स्त्रियां दो प्रकार की थीं – सद्योवधू : विवाहपूर्व तक ब्रह्मचर्य का पालन कर विद्या प्राप्त करना।

ब्रह्मवादिनी : ताउम्र ब्रह्मचर्य का पालन करने वाली।[5]

कौशल्या व तारा मन्त्रविद् थीं। सीता सन्ध्या पूजन और अत्रैयी वेदान्त अध्ययन करती थी। द्रोपदी पंडिता थी। उतरा ने अर्जुन से संगीत व नृत्य की शिक्षा प्राप्त की।

परवर्ती काल में नारी शिक्षा पर प्रतिबंध लगने लगे। यद्यपि जैन व बौद्ध परम्परा में स्त्रियां सुशिक्षित होती थीं। अशोक मार्य की पुत्री संघमित्रा लंका जाकर बौद्ध शिक्षा प्रसार में संलग्न हुई।

---

[1] कालीदास, रघुवंश 5.11, कालीदास ग्रंथावली, वाराणसी
[2] दंडी, दशकुमार चरित
[3] पाणिनी, अष्टाध्यायी 5.1.112, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1929
[4] वृ.उ. 4.1.2, रघुवंश 5, नागसेन मिलिन्दपन्हो, बम्बई 1940, पृ. 134–35
[5] वृ.उ. 3.6.8, आश्व गृ.सू. 3.8.11, 3.4, हारित संस्कार प्रकाश, ऋग्वेद 8.31, सायण भाष्य सहित संपादक एफ. मैक्समूलर, 18.0–92, भाग 5, वैदिक संशोधन मंडल, पूना, 1933–51

जैन परम्परा में जयन्ती, सहस्त्रनीक आदि विदुषी महिलाएं थीं। मनु, याज्ञवल्क्य व स्मृतिकारों ने स्त्री शिक्षा व उनके उपनयन संस्कार पर प्रतिबंध लगा दिया था।

विद्या केन्द्र

वैदिक युग में सहशिक्षा की प्रथा थी। बौद्धकाल में बौद्ध शिक्षा का प्रसार हुआ। बौद्ध संघ में दीक्षा प्राप्त करने के लिए प्रवज्या (पब्बजा) और उपसम्पदा जैसे संस्कार आवश्यक थे। महात्मा बुद्ध के बाद बौद्ध मठ व विहार शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गए। वहां धर्म व दर्शन की शिक्षा दी जाती थी।

उस समय बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र नालन्दा विश्वविद्यालय (बिहार), विक्रमशिला विश्वविद्यालय (बंगाल) और वल्लभीविश्वविद्यालय(गुजरात) थे।

बौद्ध विहारों की तरह हिन्दू मंदिर भी शिक्षा केन्द्र के रूप में विकसित हुए – तक्षशिला (पाक), पाटलिपुत्र (उ.प्र.), कन्नौज, धारा, अनहिलपाटन, काशी, कांची, कशमीर, प्रमुख शिक्षा केन्द्र थे।[1]

उपसंहार

प्राचीन भारत में विद्या मनुष्य जीवन का आवश्यक अंग माना जाता था। विद्या के बिना व्यक्ति का जीवन निराधार था। अतः विद्या का अनुसरण कर व्यक्ति अपने जीवन के रहस्यों को जानकर विकास करता है। अपना धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और चरित्र का उत्थान करता है। सामाजिक व पारिवारिक उत्तदायित्व को पूरा करता है। प्राचीन समय में मनुष्य वेदों के अलावा, पुराण, उपनिषद्, वेदांग, उपवेद, काव्य, ज्योतिष, गणित, साहित्य का अध्ययन करता था।

पूर्वमध्यकाल आते–आते मनुष्य ने वेदों का अध्ययन करना कम कर दिया और बौद्ध धर्म व जैन धर्म की शिक्षा का प्रसार बढ़ा, लेकिन फिर भी आचार्यों द्वारा हिन्दू धर्म के शिक्षा केन्द्रों पर वेदों, उपनिषदों, पुराणों, वेदशाखा का अध्यापन कराया जाता था। अन्य विषयों तर्कशास्त्र, गणित, काव्य, राजनीति, इतिहास, दर्शन, भौतिक विषय आदि थे।

❖◆❖

[1]मज्झिम निकाय 2 पृ. 103, जातक पृ. 106, 522